

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुरद्वितीय अपील संख्या 307 वर्ष 2005

1. केशवराम, पिता- सत्यनंद, आयु 50 वर्ष,
2. बिजलाल, पिता- सत्यनंद, आयु 32 वर्ष,
3. मं. खिरी, पति- सेवकराम, आयु 37 वर्ष,
4. मं. सावित्रीबाई, विधवा- सत्यनंद, आयु 80 वर्ष,
5. मं. बुण्डकुंवार, पति- टांको, आयु 42 वर्ष,
6. जवाहर, पिता- सत्यनंद, आयु 21 वर्ष,
सभी जाति: माली, पेशा: कृषि,

क्र. 1, 2, 4 और 6 - निवासी: ग्राम बगेची, तहसील सरनगढ़, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

क्र. 3 - निवासी: ग्राम सुखापाली, तहसील सारईपाली, जिला रायपुर (छ.ग.)

क्र. 5 - निवासी: ग्राम बाम्हनीपाली, तहसील सरनगढ़, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

(प्रतिवादीगण)

----- अपीलकर्ता

विरुद्ध

1. कुबेरचरण (मृत) उनके विधिक वारिसान (LRs) के माध्यम से
(क) रामशिला पटेल, पिताजी- स्व. कुबेरचरण, ग्राम अमापाली, तहसील बरामकेला, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

(ख) श्रीमती पदुम कुमार पटेल, पिताजी- कुबेरचरण, पति चिंतामणि पटेल, आयु लगभग 62 वर्ष, ग्राम लेन्द्रा, तहसील बरामकेला, जिला रायगढ़ (छ.ग.)



(ग) श्रीमती पुष्पा पटेल, पिताजी- स्व. कुबेरचरण, पति राम पटेल, आयु लगभग 54 वर्ष, ग्राम कोटरा, तहसील और थाना बरामकेला, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

(घ) श्रीमती रामबाई, पिताजी- स्व. कुबेरचरण, पति शंकरलाल पटेल, आयु लगभग 48 वर्ष, ग्राम वनवन्सपाली, तहसील और थाना बरामकेला, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

2. कबीर, पिताजी- कुबेरचरण आघरिया, आयु 25 वर्ष, ग्राम खिचरी, थाना बरामकेला, तहसील सरनगढ़, जिला रायगढ़ (छ.ग.)

(वादी क्र. 1 और 2)

3. मध्यप्रदेश राज्य (वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य), जिला मजिस्ट्रेट के माध्यम से, रायगढ़

---प्रत्यर्थागण

अपीलकर्ताओं की ओर से: श्री विनीत कुमार पांडे, अधिवक्ता।

प्रत्यर्था क्र. 1 और 2 की ओर से: -

श्री मनोज कुमार जायसवाल, अधिवक्ता।

प्रत्यर्था क्र. 3 / राज्य की ओर से: -

श्री संजीव कुमार अग्रवाल, पैनल अधिवक्ता।

माननीय श्री न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

निर्णय बोर्ड पर

18/10/2019

1. यह अपील अपीलकर्ताओं / प्रतिवादियों द्वारा निम्नलिखित विधि के सारवान प्रश्न पर सुनवाई के लिए स्वीकृत की गई थी: -



“क्या खीरोबाई द्वारा अपने अप्राप्तवय पुत्र बंशीधर की ओर से 18-1-1966 को किया गया विक्रय, क्रेता को स्वामित्व अंतरित नहीं करता है ? ”

[सुविधा के लिए, पक्षकारों को यहां पर उनकी स्थिति के अनुसार ही संदर्भित किया जाएगा, जैसा कि विचारण न्यायालय में दिखाया गया है।]

2. वादग्रस्त संपत्ति मूल रूप से एक नारायण के पास थी । उनकी मृत्यु हो गई, और वे अपनी पत्नी हीरामति और पुत्री खीरोबाई को छोड़ गए । बंशीधर खीरोबाई का पुत्र है और वादग्रस्त संपत्ति का उत्तराधिकारी वह (बंशीधर) बना । बंशीधर की अप्राप्तवयता के दौरान, खीरोबाई, जो उसकी नैसर्गिक संरक्षक थीं, ने 18-1-1966 को एक विक्रय विलेख (प्र.पी -1) पर हस्ताक्षर किया, जिसमें वादग्रस्त संपत्ति को वादीगण के पक्ष में हस्तांतरित किया गया । वादीगण का मामला यह है कि सत्यानंद खीरोबाई के चाचा थे और 1973-74 में उन्होंने राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज कराया था और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 145 के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही में प्र. क्र. 77/75, दिनांक 3-11-1976 को आदेश पारित किया गया था, जिसमें सत्यानंद का कब्जा पाया गया था और वादी क्र. 1 द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई थी, जिसके कारण स्वामित्व के आधार पर कब्जे के लिए प्रकरण दायर करना आवश्यक हो गया था, जिसमें अन्य विषयों के साथ-साथ यह भी कहा गया था कि वादीगण ने बंशीधर से उनकी नैसर्गिक संरक्षक मां के माध्यम से वादग्रस्त संपत्ति खरीदी है, इस प्रकार, वे वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे के साथ-साथ नुकसान की वसूली के लिए भी हकदार हैं।

3. इस मामले में, प्रतिवादी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वे सत्यानंद की मृत्यु के बाद लंबे समय से कब्जे में हैं और भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की



धारा 145 के तहत की गई कार्यवाही में, सत्यानंद – प्रतिवादियों के पूर्वज का कब्जा उप-विभागीय मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पाया गया था। इस प्रकार, वादीगण का कोई अधिकार और स्वामित्व नहीं है और खिरोबाई के पास वादीगण के पक्ष में प्र.पी -1 निष्पादित करने का कोई अधिकार और स्वामित्व नहीं था, वह भी हिंदू अल्पवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (संक्षेप में '1956 का अधिनियम') की धारा 8(3) के तहत सक्षम न्यायालय से अनुमति प्राप्त किए बिना। प्रतिवादियों ने यह वैकल्पिक तर्क भी प्रस्तुत किया कि वे बहुत लंबे समय से वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में हैं, अतः उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के द्वारा अपना स्वामित्व पूरा कर लिया है।

4. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की सराहना करते हुए, वादी के मुकदमे का फैसला यह कहते हुए सुनाया कि 1956 के अधिनियम की धारा 8 (3) के तहत न्यायालय की अनुमति के बिना वादी के पक्ष में नैसर्गिक संरक्षक के रूप में खिरोबाई द्वारा निष्पादित बिक्रीनामा शून्य नहीं है और इसके अलावा यह माना गया कि हिरामती – नारायण की बेवा, के पास नारायण की मृत्यु के बाद वादग्रस्त संपत्ति पर पूरा अधिकार था, जिसे अपीलकर्ताओं/ प्रतिवादियों ने व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत अपील में चुनौती दी थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा तीन दफा की रिमांड के बाद, प्रथम अपील क्रमांक 23-ए/1992 में, 17-2-2005 को, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अंततः विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की और अपील को खारिज कर दिया। उक्त निर्णय और डिक्री पर प्रश्न उठाते हुए, तत्काल दूसरी अपील की गई है जिसमें विधि का सारवान प्रश्न तैयार किया गया है जिसे इस निर्णय के प्रारंभिक कंडिकाओं में निर्धारित किया गया है।



5. यहां अपीलकर्ताओं/प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विनीत कुमार पांडे द्वारा दृढ़तापूर्वक यह तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि बंशीधर उस समय अप्राप्तवय थे, जब विक्रय विलेख प्र.पी.-01 दिनांक 18-1-1966 को उनके नैसर्गिक संरक्षक(मां) खीरोबाई द्वारा निष्पादित किया गया था, उक्त विक्रय विलेख, जो आरंभतः शून्य है, ने क्रेतागण/वादीगण को कोई भी अधिकार प्रदान नहीं किया है, इसलिए, निम्न दोनों न्यायालयों ने यह मानने में गंभीर अवैधता की है कि वादी ने खीरोबाई - बंशीधर के नैसर्गिक संरक्षक - से खरीद पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार, दूसरी अपील को स्वीकार करते हुए प्रतिवादीगण के पक्ष में विधि के सारवान प्रश्न का उत्तर देते हुए निम्न दोनों न्यायालयों के निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य हैं।

6. वादीगण/प्रतिवादी क्र. 01 एवं 02 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री मनोज कुमार जयसवाल ने कहा कि यद्यपि बंशीधर की नैसर्गिक संरक्षक (मां) खीरोबाई ने 1956 के अधिनियम की धारा 8(3) के तहत न्यायालय की अनुमति के बिना दिनांक 18-1-1966 को विक्रय पत्र निष्पादित किया, किंतु बंशीधर 1977-78 (लगभग) में वयस्क हो गया था तथा बंशीधर ने उक्त विक्रय विलेख को परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 60 (ए) के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर न तो इंकार किया और न ही परिवर्जन किया, इसलिए, अब उक्त संव्यवहार अंतिम हो गया है और प्रतिवादी खीरोबाई द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित उक्त विक्रय विलेख से बंधित हैं, इसलिए, द्वितीय अपील खारिज की जानी चाहिए।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और ऊपर दिए गए उनके प्रतिद्वंद्वी निवेदनों पर विचार किया है और अत्यंत सावधानी के साथ उनके अभिलेख को भी देखा है।



8. यह स्वीकृत तथ्य है कि, वादग्रस्त संपत्ति पहले नारायण के पास थी और उसके बाद, जैसा कि दोनों न्यायालयों ने माना है, हीरामती को उत्तराधितार में मिली थी और अंततः, यह हीरामती के पोते बंशीधर को मिली और अंततः, मुकदमे की जमीन को बंशीधर ने अपने नैसर्गिक संरक्षक (मां) खिरोबाई के माध्यम से वादी के पक्ष में दिनांक 18-1-1966 के प्र.पी.-01 के माध्यम से विक्रय कर दिया था। वादी के अनुसार, व्य.प्र.सं. की धारा 145 के तहत कार्यवाही में, यह घोषित किया गया था कि चूंकि प्रतिवादियों का कब्जा है और उनका पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था, जिसके कारण प्रकरण प्रारंभ हुआ। निम्न दोनों न्यायालयों ने प्रतिवादियों के स्वामित्व को अस्वीकार कर दिया है, जिस पर उन्होंने उत्तराधिकार के माध्यम से वादग्रस्त संपत्ति पर दावा किया था, क्योंकि सत्यानंद और नारायण के पिता, दोनों भाई थे।

9. अब, इस द्वितीय अपील में जो सारवान प्रश्न तैयार किया गया है, वह यह है कि क्या खिरोबाई द्वारा बंशीधर के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में किया गया व्ययन वादी/क्रेतागण को स्वामित्व प्रदान करता है?

10. प्र.पी.-01 के माध्यम से क्रेता/वादी के स्वामित्व को चुनौति देने के लिए, 1956 के अधिनियम की धारा 8(3) पर निर्भर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) के उल्लंघन में किसी नैसर्गिक संरक्षक द्वारा अचल संपत्ति का कोई भी व्ययन आरंभतः शून्य होगा और इससे क्रेता/वादी के पक्ष में उक्त अचल संपत्ति का स्वामित्व नहीं प्राप्त होगा।

11. याचिका पर विचार करने के लिए, 1956 के अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1), (2) और (3) में निहित प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा जो इस प्रकार हैं: -



“ 8. नैसर्गिक संरक्षक की शक्तियाँ- (1) इस धारा के उपबन्धों के अधीन यह है कि किसी भी हिन्दू अप्राप्तवय का नैसर्गिक संरक्षक उन कार्यों को करने की शक्ति रखता है जो उस अप्राप्तवय के फायदे के लिए या उस अप्राप्तवय की सम्पदा के आपन, संरक्षण या फलदायक के लिये आवश्यक या युक्तियुक्त और उचित हों, किन्तु संरक्षक किसी भी दशा में अप्राप्तवय को वैयक्तिक प्रसंविदा के द्वारा आबद्ध नहीं कर सकता । ”

(2) नैसर्गिक संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना-

(क) न तो अप्राप्तवय की स्थावर सम्पत्ति के किसी भी भाग को बन्धक या भारित अथवा विक्रय, दान या विनिमय द्वारा या अन्यथा अन्तरित करेगा, और

(ख) न ऐसी सम्पत्ति के किसी भी भाग की पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए या जिस तारीख को अप्राप्तवय प्राप्तवयता में प्रवेश करेगा उस तारीख से एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिये पट्टे पर देगा ।

(3) नैसर्गिक संरक्षक द्वारा उपधारा (1) या उपधारा (2) के उल्लंघन में किया गया स्थावन सम्पत्ति का कोई भी व्ययन, अप्राप्तवय की या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति की प्रेरणा पर शून्यकरणीय होगा ।”

12. उपर्युक्त प्रावधान का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि अधिनियम 1956 की धारा 8(2) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि





नैसर्गिक संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अप्राप्तवय की अचल संपत्ति के किसी भाग को बंधक नहीं रख सकता, भार नहीं डाल सकता, या विक्रय, दान, विनिमय या अन्यथा द्वारा हस्तांतरित नहीं कर सकता, या ऐसी संपत्ति के किसी भाग को पांच वर्ष से अधिक अवधि के लिए या अप्राप्तवय के वयस्क होने की तिथि से एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए पट्टे पर नहीं दे सकता। अधिनियम 1956 की धारा 8 की उपधारा (3) में प्रावधान है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) के उल्लंघन में नैसर्गिक संरक्षक द्वारा अचल संपत्ति का कोई भी हस्तांतरण अप्राप्तवय या उसके अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति के विकल्प पर शून्यकरणीय है।

13. **अमिरथम कुडुंबह बनाम सरनाम कुडुंबन¹** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पिता/ नैसर्गिक संरक्षक द्वारा अपने पुत्र की अप्राप्तवयता के दौरान किया गया हस्तांतरण उसके पुत्र के विकल्प पर शून्यकरणीय था, जो वास्तविक स्वामी था, और नैसर्गिक संरक्षक से ऐसी संपत्ति खरीदने वाले किसी भी व्यक्ति को केवल एक अपराजेय स्वामित्व प्राप्त होगा। यह भी पाया गया कि लिया गया कि अप्राप्तवय के पास संपत्ति में एक अधिकार था जो मौजूदा प्रतिकूल दावों को पराजित कर सकता था, और ऐसा अधिकार एक हस्तांतरित योग्य अधिकार है। 1956 के अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (3) के प्रभाव पर विचार करते हुए, यह माना गया कि अप्राप्तवय या उसके उत्तराधिकारी-हितधारक को जीवाभ्यंतर हस्तांतरण के कारण उसके अधीन दावा करने के लिए, ऐसे मुकदमे के लिए निर्धारित अवधि के भीतर कार्यवाही करनी चाहिए, अर्थात् अप्राप्तवय की मृत्यु या प्राप्तवयता प्राप्त करने के दिनांक से तीन वर्ष, जैसा भी मामला हो: -

1 ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1256



“9. इस उपधारा का प्रभाव यह है कि अप्राप्तवय के लाभ के अन्यथा या न्यायालय की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना किसी नैसर्गिक संरक्षक द्वारा अचल संपत्ति का कोई भी व्ययन शून्यकरणीय है। ऐसी विक्रय से बचने का हकदार व्यक्ति या तो अप्राप्तवय है या उसके अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति। इसका अर्थ यह है कि अप्राप्तवय या उसकी मृत्यु की स्थिति में उसका विधिक प्रतिनिधि या उसके अधीन दावा करने वाला उसका उत्तराधिकारी जीवाभ्यंतरों के हस्तांतरण के कारण, ऐसे मुकदमे के लिए निर्धारित अवधि के भीतर कार्रवाई करनी चाहिए, अर्थात् अप्राप्तवय की मृत्यु या वयस्कता प्राप्त करने के दिनांक से तीन वर्ष, जैसा भी मामला हो। वर्तमान प्रकरण में, जैसा कि निम्न न्यायालयों ने पाया, अप्राप्तवय के प्राप्तवय होने के तीन वर्ष के भीतर वाद लाया गया था।”

14. इसी प्रकार, विश्वम्भर एवं अन्य बनाम लक्ष्मीनारायण (मृत) विधिक वारिसान व अन्य² के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना संरक्षक द्वारा किया गया विक्रय अधिनियम 1956 की धारा 8(3) के अन्तर्गत शून्यकरणीय है, यह आरंभतः शून्य नहीं है तथा क्रेता से कब्जे की वसूली के लिए वाद दायर करना होगा तथा उसे विक्रय विलेख को अपास्त करने का दावा करना होगा। माननीय न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या ऐसा अन्यसंक्रामण शून्य है या शून्यकरणीय है और पाया था कि इस तरह से किया गया अन्यसंक्रामण अप्राप्तवय और उसके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति के विकल्प पर शून्यकरणीय होगा।



15. विश्वम्भर (सुप्रा) में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए, नांगली अम्मा भवानी अम्मा बनाम गोपालकृष्णन नायर³ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने माना है कि 1956 के अधिनियम की धारा 8(2) का उल्लंघन करके किया गया संव्यवहार केवल अप्राप्तवय के विकल्प पर ही शून्यकरणीय है और धारा 8(3) की स्पष्ट भाषा के अनुसार शून्य नहीं है। यह भी माना गया कि ऐसे संव्यवहार को शून्य घोषित करने से अप्राप्तवय को प्राप्तवय होने पर ऐसे संव्यवहार का अनुसमर्थन या अभिपुष्टि करने के अधिकार से वंचित होना पड़ेगा और इसलिए ऐसे संव्यवहार से बचने के लिए, अप्राप्तवय को परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 60 के अंतर्गत निर्धारित अवधि के भीतर वाद दायर किया जाना चाहिए।

16. अंततः और हाल ही में, मुरुगन और अन्य बनाम केशव गौंडर (मृत) विधिक प्रतिनिधि और अन्य⁴ के प्रकरण में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अप्राप्तवय के विकल्प पर या उसकी ओर से किए गए अन्यसंक्रामण, जो शून्यकरणीय थे, को वादी द्वारा कब्जे के अनुतोष का दावा करने से पहले अपास्त किया जाना आवश्यक था। माननीय न्यायाधीशों ने आगे कहा कि विक्रय विलेखों को अपास्त करने की याचना किए बिना वादी की ओर से दायर किया गया मुकदमा, इस प्रकार, ठीक से तैयार नहीं किया गया था और इसे डिक्री नहीं किया जा सकता था।

17. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लौटते हुए, यह स्पष्ट है कि इस मामले में अप्राप्तवय बंशीधर द्वारा धारित वादग्रस्त संपत्ति को उसकी नैसर्गिक संरक्षक (मां) खीरोबाई ने न्यायालय की अनुमति के बिना वादीगण के पक्ष में दिनांक

3 (2004) 8 एस.सी.सी. 785

4 2019 एस.सी.सी. ऑनलाईन एस.सी. 270



18-1-1966 को प्र.पी.-01 के माध्यम से अन्यसंक्रामण कर दिया था, इसलिए यह अप्राप्तवय बंशीधर या उसके अधीन दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के विकल्प पर स्वाभाविक रूप से शून्यकरणीय था, जैसा कि पूर्वोक्त निर्णयों (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा व्याख्या की गई थी, किन्तु, निश्चित रूप से, बंशीधर वर्ष 1978 में प्राप्तवय हो गया। प्राप्तवयता की आयु प्राप्त करने की तिथि से तीन वर्ष के भीतर, परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 60 (ए) के अंतर्गत, जो अप्राप्तवय के प्राप्तवय होने पर तीन वर्ष की परिसीमा का प्रावधान करता है, ताकि उसके संरक्षक द्वारा किए गए संपत्ति के हस्तांतरण को अपास्त किया जा सके, बंशीधर को प्रश्नगत संव्यवहार (प्र.पी.-01) से बचने के लिए वाद दायर करना आवश्यक था। यह स्वीकृत है कि, बंशीधर द्वारा इस तरह के अन्यसंक्रामण को अस्वीकार करने या वादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख प्र.पी.-01 को अपास्त करने के लिए ऐसा कोई वाद नहीं लाया गया था।

18. प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम 1956 की धारा 8(3) के अन्तर्गत शून्यकरणीय विक्रय विलेख के आधार पर, जिसके द्वारा वादीगण ने वाद सम्पत्ति क्रय की है, का स्वामित्व उन्हें प्रदान किया जाएगा, जैसा कि स्वीकृत है कि न तो इसका खंडन किया गया, न ही इसे परिवर्जित किया गया, न ही सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 60(ए) के अन्तर्गत निर्धारित सीमा अवधि के अन्दर बंशीधर द्वारा इसकी अनुसमर्थन या अभिपुष्टि की गई ?

19. विचारार्थ प्रस्तुत प्रश्न अब एकीकृत नहीं रह गया है और सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा जी. अन्नामलाई पिल्लई बनाम जिला राजस्व अधिकारी एवं अन्य⁵ के मामले में अधिकारपूर्वक निर्णय दिया गया है, जिसमें

5 (1993) 2 एस.सी.सी. 402



1956 के अधिनियम की धारा 8(2)(बी) एवं (3) पर विचार करते हुए यह माना गया है कि अप्राप्तवय-स्वामी के संरक्षक द्वारा निष्पादित अचल संपत्ति का शून्यकरणीय पट्टा अप्राप्तवय के प्राप्तवय होने पर शून्यकरणीय है और इसका प्रभाव यह होगा कि पट्टा प्रारंभ से ही शून्य हो जाएगा और पट्टेदार के पक्ष में कोई वैधानिक अधिकार अर्जित नहीं होंगे। प्रतिवेदन की कंडिका 5 में, यह निम्नानुसार देखा गया है: -

"5. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को श्रवण किया है। हमें राजस्व अधिकारियों के आदेश, विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले और रिट अपील में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से अवगत कराया गया है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने एक स्पष्ट निर्णय में, हमारे द्वारा शुरू में पूछे गए प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया और अपीलकर्ता अन्नामलाई पिल्लई के खिलाफ निम्नलिखित तर्क दिया:

"हम पहले ही देख चुके हैं कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 8 का खंड (3) विशिष्ट रूप से संव्यवहार को शून्यकरणीय बनाता है। इस मामले में संरक्षक द्वारा निष्पादित पट्टा निषिद्ध है और इस अर्थ में यह किसी भी अधिकार के बिना था। कानूनी प्रभावकारिता और वैध, शून्य और शून्यकरणीय करारों के बीच अंतर पर, हम सैल्मंड ऑन ज्यूरिसप्रूडेंस, बारहवें संस्करण में पृष्ठ 341 पर निम्नलिखित मार्ग पाते हैं: '...

'...एक वैध करार वह है जो पक्षकारों के आशय के अनुसार पूरी तरह से संचालित होता है। एक शून्य करार वह है जो विधिक मान्यता या मंजूरी प्राप्त करने में पूरी तरह से विफल रहता है, पक्षकारों की घोषित इच्छा कानूनी प्रभावकारिता से पूरी तरह से



वंचित रहता है। एक शून्यकरणीय करार इन दोनों मामलों के बीच में है। यह शून्य नहीं है, लेकिन इसका संचालन सशर्त है और निरपेक्ष नहीं है। इसके उद्भव में कुछ दोष के कारण इसे इसके किसी एक पक्ष के विकल्प पर नष्ट या अपास्त किया जा सकता है। इस शक्ति के प्रयोग पर करार की न केवल प्रभावकारिता समाप्त हो जाती है, बल्कि इसे प्रारंभ से ही शून्य माना जाता है। इसका परिहार इसके निर्माण से संबंधित है। काल्पनिक या आकस्मिक प्रभावकारिता जिसे अब तक इसके लिए जिम्मेदार ठहराया गया है, पूरी तरह से गायब हो जाती है, जैसे कि यह कभी अस्तित्व में ही नहीं थी। दूसरे शब्दों में, एक शून्यकरणीय करार वह है जो इसके किसी एक पक्ष के चुनाव पर शून्य या वैध है।

इस अंतर को *सतगुर प्रसाद बनाम हरनारायण दास*⁶ में दर्ज प्रिवी काउंसिल के निर्णय और *एसएनआर सुंदर राव एंड संस, मद्रुरै बनाम सीआईटी*⁷ में खंडपीठ के निर्णय में भी न्यायिक अवेक्षा से देखा गया है। खंडपीठ ने प्रिवी काउंसिल के फैसले के बाद इस प्रकार फैसला सुनाया:-

' जब कोई व्यक्ति, जो अन्यसंक्रामण से असहमति जताने का हकदार है, ऐसा करता है, तो उसकी असहमति उस संव्यवहार के संबंध में होती है, न कि केवल उस असहमति के दिनांक पर अन्यसंक्रामणकर्ता के कब्जे के संबंध में।

6 ए.आई.आर. 1932 पी.सी. 89 : 59 आई.ए. 147

7 ए.आई.आर. 1957 मद्रास 451





इसलिए, साक्ष्य का प्रभाव संव्यवहार से छुटकारा पाना है, जिसके परिणामस्वरूप विधि में ऐसा लगता है कि संव्यवहार कभी हुआ ही नहीं था।

इसलिए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब पांचवें प्रत्यर्थी ने अपने पिता, चौथे प्रत्यर्थी द्वारा निष्पादित पट्टे का परिवर्जन किया, तो पट्टा आरंभतः शून्य हो गया और इसलिए अपीलकर्ता के पक्ष में कोई वैधानिक अधिकार नहीं मिल सका। "

20. मुरुगन (सुप्रा) में, जी. अन्नामलाई पिल्लई (सुप्रा) में दिए गए विधि के सिद्धांत पर ध्यान दिया गया और यह स्पष्ट रूप से माना गया कि अप्राप्तवय की ओर से विक्रय विलेख के निराकरण के लिए दावा करना अनिवार्य था और अप्राप्तवय के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति के लिए सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 60 (ए) के तहत निर्धारित तीन वर्ष की अवधि के भीतर कार्रवाई करना आवश्यक था और यदि उसे निराकृत नहीं किया गया है, तो शून्यकरणीय विक्रय विलेख के शून्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मुरुगन (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित टिप्पणी की: -

"36. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त निर्णय पर निर्भर करते हुए तर्क दिया कि जब बलरामन द्वारा विक्रय को रिलीज डीड द्वारा परिवर्जन किया गया है तो आरंभतः शून्य हो गया। जी. अन्नामलाई पिल्लई बनाम जिला राजस्व अधिकारी (सुप्रा) में निर्धारित प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं हो सकता। वर्तमान मामले में अप्राप्तवय की ओर से विक्रय विलेख का कोई खंडन नहीं किया गया है, इसलिए शून्यकरणीय विक्रय विलेख के शून्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।



37. इस प्रकार, हमारा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान मामले में अप्राप्तवय के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति के लिए अप्राप्तवय की मृत्यु की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर कार्रवाई करना आवश्यक था ताकि बलरामन द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख को अपास्त किया जा सके। इस प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बलरामन द्वारा निष्पादित विक्रय विलेखों को कानून द्वारा निर्धारित सीमा अवधि के भीतर अस्वीकृत या परिवर्जन नहीं गया था। वादप्रश्न क्र. 3 का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।”

21. उपरोक्त विधिक विश्लेषण के आलोक में तथा इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए, इस मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि यद्यपि बंशीधर की नैसर्गिक संरक्षक खीरोबाई ने, अप्राप्तवय बंशीधर के कहने पर, अधिनियम 1956 की धारा 8(2) के अंतर्गत न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना, बंशीधर द्वारा अपने अप्राप्तवय होने के दौरान धारित वाद संपत्ति को अन्यसंक्रमित कर दिया, जिससे अधिनियम की धारा 8(3) के अंतर्गत संव्यवहार शून्यकरणीय हो गया, किन्तु उक्त बंशीधर वर्ष 1978 में प्राप्तवय हो गया, तथापि, उसने (बंशीधर ने) प्राप्तवय होने की तिथि से तीन वर्ष के भीतर, जैसा कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 60(ए) के अंतर्गत अनिवार्य है, विक्रय विलेख प्र.पी-1 को अपास्त करने या परिवर्जन करने के लिए वाद दायर नहीं किया, इस प्रकार है, बंशीधर ने उक्त विक्रय विलेख से बचने के लिए निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर विक्रय विलेख को परिवर्जन या अस्वीकृत नहीं किया है और इसलिए विक्रय विलेख (प्र.पी-1) प्रतिवादिगण / अपीलकर्ताओं पर बंधनकारी है।



22. उपर्युक्त विधिक विश्लेषण के आलोक में, निम्न दोनों न्यायालय वादी के पक्ष में डिक्री देने में पूरी तरह न्यायसंगत हैं, जो न तो विकृत है और न ही अभिलेख के विपरीत है। विधि के सारवान प्रश्न का उत्तर वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया गया है। परिणामस्वरूप, अपील खारिज की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया।

23. तदनुसार डिक्री तैयार की जाए।

सही/-
(संजय के. अग्रवाल)
न्यायाधीश

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।